मसीही विश्वासियों के लिए "पहला तीमुथियुस" नामक बाइबॅल-पुस्तक का एक अध्ययन

PAHLA TIMUTHIYUS

First Hindi Edition : January-2008

Adapted into Hindi by : **J.P. Pandey**
Assisted by : **R.K. Khullar**

This book is based on the English title "Lessons in 1 TIMOTHY for Growing Believers" (Tim Mcmanigle) published by the Fellowship Bible Church, 3217, Middle Road, Winchester, VA. (U.S.A.).

Copyright © The Fellowship Bible Church,
Winchester, VA. (U.S.A.).

All rights reserved

Printed in Nepal

विषय सूची

अध्याय	पृष्ठ संख्या
एक	5–9
दो	10–13
तीन	14–23
चार	24–31
पाँच	32–38
छः	39–43

पहला तीमुथियुस

नामक

बाइबॅल-पुस्तक का एक संक्षिप्त अध्ययन

एक

तीमुथियुस नामक विश्वासी को संत पौलुस की संगति में मसीही शिष्यता मिली थी। उसने अपनी युवा अवस्था में संत पौलुस की मिशनरी यात्राओं में उसके साथ सफर किया था और आगे चलकर परमेश्वर के वचन के एक विश्वासयोग्य शिक्षक एवं पौलुस के एक विश्वसनीय सहकर्मी के रूप में सेवा की थी। इस श्रृंखला की **रोमियों, इफिसियों** तथा **पहला कुरिन्थियों** नामक पुस्तकें तीन विभिन्न कलीसियाओं को लिखी गयी थीं। **पहला तीमुथियुस** नामक यह पत्री भी कलीसिया के लिए ईश्वरीय संदेश है, यद्यपि यह एक खास व्यक्ति को सम्बोधित की गयी है।

" पौलुस की ओर से, हमारे उद्धारकर्ता परमेश्वर और हमारी आशा मसीह यीशु की आज्ञा के अनुसार जो मसीह यीशु का प्रेरित है, विश्वास में मेरे सच्चे पुत्र तीमुथियुस को : पिता परमेश्वर और हमारे प्रभु यीशु मसीह की ओर से तुझे, अनुग्रह, दया और शान्ति मिले " (प0तीमु0 1:1-2)। यहां पौलुस द्वारा स्वयं को **मसीह यीशु का प्रेरित** कहना, परमेश्वर की सामर्थ्य एवं उसके अनुग्रह की महानता की अद्‌भुत साक्षी है। मसीहियों पर घोर अत्याचार करने वाले इस व्यक्ति (प्रेरित0 9:1-2) के जीवन में परमेश्वर के महान अनुग्रह द्वारा ऐसा अद्‌भुत काम हुआ कि वह यीशु का एक **प्रेरित** हो गया। पहले पद में पौलुस ने परमेश्वर को हमारा **उद्धारकर्ता** कहा है। क्यों? क्योंकि उद्धार-कार्य की सम्पूर्ण योजना पिता परमेश्वर की ही देन है। सृष्टि-रचना से पूर्व ही पिता परमेश्वर ने हमें बचाने तथा

अपने साथ स्वर्ग में निवास करने योग्य बनाने की पूर्व-योजना बनायी (इफि0 1:3-4)। हमारा उद्धार करने का **समय पूरा होने पर** उसने अपने **एकलौते पुत्र** को हमारे बदले बलिदान होने के लिए इस धरती पर भेजा (यूह0 3:16-17)।

इसके बाद संत पौलुस ने मसीह यीशु को "हमारी **आशा**" कहा है। निःसंदेह, यीशु मसीह ही हमारी आशा है क्योंकि क्रूस पर उसके द्वारा सम्पन्न किए गये उद्धार-कार्य के द्वारा ही हमें पाप के दोष-दंड से, पाप की अधिकार-सत्ता की अधीनता से तथा (स्वर्ग में) पाप की उपस्थिति से अनन्तकालीन छुटकारा प्राप्त हुआ है। प्रभु यीशु का वायदा है कि वह अपने लोगों को लेने के लिए एक दिन पुनः वापस आएगा (यूह0 14:1-3)। जैसे-जैसे हम परमेश्वर के अनुग्रह एवं ज्ञान में बढ़ते जाते हैं और पवित्र आत्मा की अधीनता में जीवन जीना सीखते हैं, वैसे-वैसे पवित्र आत्मा हमारे मन की आशा को **मसीह पर** केन्द्रित करता है (यूह0 15:26; 16:13-14)। चूंकि तीमुथियुस के मसीही ज्ञान (मन-परिवर्तन) तथा शिष्यता-विकास में पौलुस की शिक्षा-संगति का विशेष प्रभाव रहा, शायद इसीलिए उसने तीमुथियुस को "विश्वास में मेरे सच्चे पुत्र" कह कर सम्बोधित किया।

"जैसा मैंने मैसीडोनिया जाते समय तुझ से इफिसुस में रहने का आग्रह किया था अब भी वहीं रह, जिस से तू वहां कुछ लोगों को आदेश दे सके कि वे अन्य प्रकार की शिक्षा न दें" (प0तीमु0 1:3)। इफिसुस में पौलुस के साथ तीमुथियुस भी था। कुछ समय बाद, प्रभु की अगुवाई में पौलुस मैसीडोनिया चला गया, और तीमुथियुस को इफिसुस में ही छोड़ दिया ताकि वह सत्य-शिक्षा देता रहे तथा लोगों

को पौलुस व तीमुथियुस द्वारा दी गई शिक्षा के अलावा किसी **"अन्य प्रकार की शिक्षा"** से दूर रहने की चेतावनी दे। तीमुथियुस को इफिसुस में छोड़ने के बाद, पौलुस ने अपनी शिक्षा की याद दिलाते हुए तथा कुछ और बातों को समझाते हुए, तीमुथियुस के पास यह पत्री भेजी।

"जैसा मैंने मैसीडोनिया जाते समय तुझ से इफिसुस में रहने का आग्रह किया था अब भी वहीं रह, जिस से तू वहां कुछ लोगों को आदेश दे सके कि वे अन्य प्रकार की शिक्षा न दें, न उन दन्तकथाओं और असीमित वंशावलियों पर ध्यान दें, जो केवल निरर्थक विवाद को ही बढ़ाते हैं और परमेश्वर की उस योजना को पूर्ण नहीं करते जो विश्वास पर आधारित है" (प0तीमु0 1:3-4)। इफिसुस की कलीसिया के कुछ शिक्षक "दन्तकथाओं और यहूदी वंशावलियों" की शिक्षा में अपना समय गंवा रहे थे। ऐसी शिक्षाएं लोगों को परमेश्वर के अनुग्रह की ओर उन्मुख करके उनका विश्वास सुदृढ़ करने के बजाय सिर्फ विवाद को ही बढ़ावा दे रही थीं। इन शिक्षाओं से पवित्र आत्मा के चलाए जीवन-आचरण की सीख भी नहीं मिल रही थी। रोचक है कि पौलुस द्वारा इफिसुस की मंडली को पहले से ही यह चेतावनी दी गई थी कि उनके मध्य झूठे शिक्षक "उठ खड़े होंगे" और ऐसा ही हुआ (प्रेरित0 20:28-30)। जैसा इफिसुस की मंडली में हुआ, वैसा आज भी किसी मंडली में होना सम्भव है। कहने का तात्पर्य यह है कि जब मंडली के लोग शारीरिकता के चलाए जीवन जीते हैं तो झूठी शिक्षाओं की ओर बड़ी आसानी से बहकते हैं। हां, आज भी जिस मंडली के लोग शारीरिकता में जीवन व्यतीत कर रहे हैं, उस मंडली में ऐसा हो रहा

है। जैसे इफिसुस की मंडली को झूठी शिक्षाओं से दूर रखने हेतु प्रभु परमेश्वर ने तीमुथियुस को तैयार किया था कि वह उस मंडली की समुचित देखरेख करे, वैसे ही हमें भी पिता परमेश्वर की ओर दृष्टि लगाए रहना है कि वह हमारी मंडलियों को झूठी शिक्षा से बचाने हेतु सुयोग्य अगुवे खड़ा करे (दू0पत0 2:1-3)।

"हे मेरे पुत्र तीमुथियुस, तेरे विषय में जो भविष्यवाणियां पहिले से ही की गई थीं उन्हीं के अनुसार मैं तुझे यह आज्ञा सौंपता हूं कि उनके द्वारा तू कुशलता से लड़, और विश्वास तथा अच्छे विवेक को बनाए रख जिसकी उपेक्षा कर के कुछ लोगों का विश्वास-रूपी जहाज़ डूब गया है। इन्हीं में से हुमिनयुस और सिकन्दर हैं, जिन्हें मैंने शैतान को सौंप दिया है कि उन्हें ईशनिन्दा न करने का पाठ सिखाया जाय" (प0तीमु0 1:18-20)। उन्नीसवें पद से यह इशारा मिलता है कि तीमुथियुस को सत्य का ज्ञान था और सही व गलत को पहचानने की उसमें क्षमता भी थी। रोचक है कि पौलुस ने तीमुथियुस को इस (आत्मिक) "लड़ाई" में सिर्फ "विश्वास तथा अच्छे विवेक" से सुसज्जित होकर भाग लेने को कहा। विश्वास तथा अच्छा विवेक एक दूसरे पर निर्भर हैं। दोषी विवेक होने पर हमारा विश्वास दुर्बल होता जाता है। बहरहाल, **मसीह के लहू पर विश्वास** रखने से हमें **अच्छा विवेक** मिलता है। पौलुस ने तीमुथियुस को विश्वास एवं अच्छा विवेक बनाए रखने की सलाह दी, क्योंकि कुछ लोग अविश्वास की राह पर चल कर अपना विवेक रूपी बेड़ा डूबो दिए हैं। यह शारीरिकता के अनुसार जीवन बिताने का परिणाम है। शारीरिकता में गलत व सही की सच्ची पहचान सम्भव नहीं है। अतएव झूठी शिक्षाओं की ओर बहकना

आसान होता है। बीसवें पद में, गलत शिक्षा में बहकाए गए दो व्यक्तियों का उदाहरण है। शारीरिकता में होने के कारण यह दोनों व्यक्ति सत्य की सच्ची पहचान करने में असमर्थ थे जिसके परिणामस्वरूप उनकी समझ एवं शिक्षा सत्य-विरोधी हो गई। अन्ततः उन्हें स्थानीय कलीसिया की संगति-सहभागिता से हटा कर शैतान के हवाले कर दिया गया, ताकि उसके द्वारा की जाने वाली बर्बादी के कारण वे अपनी शारीरिक जीवन-शैली की बुराई को पहचान सकें और परमेश्वर की दया से पुनः प्रभु की ओर मन फिराएं (प0कुरि0 5:1-5)।

जब कोई विश्वासी, पाप में ही जीवन बिताता है और अपने बुरे मार्ग से प्रभु की ओर मन फिराने से इनकार करता रहता है, तब प्रभु परमेश्वर कलीसिया को यह अधिकार देता है कि वह ऐसे जन को शैतान के हवाले कर दे, ताकि उस व्यक्ति के जीवन में ऐसी गम्भीर आवश्यकताएं पैदा हों जिनके कारण (सम्भवतः) वह व्यक्ति प्रभु की ओर पुनः वापिस आए।

दो

"अब सबसे पहिले मेरा अनुरोध यह है कि विनतियां और प्रार्थनाएं, निवेदन तथा धन्यवाद सब मनुष्यों के लिए अर्पित किए जाएं, विशेष रूप से राजाओं और सब पदाधिकारियों के लिए, जिससे कि हम चैन और शान्ति सहित, पूर्ण भक्ति तथा गम्भीरता के साथ जीवन व्यतीत कर सकें। यह हमारे उद्धारकर्ता परमेश्वर की दृष्टि में भला और ग्रहणयोग्य है, जो यह चाहता है कि सब लोग उद्धार प्राप्त करें और सत्य को जानें" (प0 तीमु0 2:1-4)। यह चारों पद पहले अध्याय के अन्त में पौलुस द्वारा कही गई बात से सम्बद्ध हैं, अर्थात् जो लोग **शरीर** के अनुसार जीवन जीते हैं, वे सही व गलत की सच्ची पहचान करने की क्षमता खोने लगते हैं। इसके परिणामस्वरूप वे अपनी विश्वास रूपी नौका को डुबाने लगते हैं। ऐसे लोग धोखे में फंस कर झूठी शिक्षाओं में बहक जाते हैं। अतः पौलुस यह कहता है कि **सब मनुष्यों** को प्रार्थना की जरूरत है। हां, इनमें राजा और अन्य पदाधिकारीगण भी शामिल हैं। पवित्र आत्मा के अनुसार आचरण करने वाला विश्वासी दूसरे लोगों के प्रति सच्चा प्रेम-भाव रखता है, उनके लिए सच्चे मन से प्रार्थना करता है और दूसरों की भलाई के लिए सच्चे तौर से उनकी चिन्ता करता है। इसके विपरीत **शारीरिक** जीवन व्यतीत करने वाला व्यक्ति सिर्फ अपनी चिन्ता करता है, दूसरों के लिए चिन्ता व प्रार्थना में सच्ची रुचि नहीं रखता।

"क्योंकि परमेश्वर एक ही है और परमेश्वर तथा मनुष्यों के बीच एक ही मध्यस्थ भी है, अर्थात् मसीह यीशु, जो मनुष्य है। जिसने अपने आपको सब की फिरौती के दाम में दे दिया और इसकी साक्षी उचित समय पर दी गई। मैं सत्य कहता हूं, झूठ नहीं बोलता, कि इसी अभिप्राय से मैं प्रचारक, प्रेरित और ग़ैरयहूदियों के लिए विश्वास और सत्य का उपदेशक ठहराया गया। इसलिए मैं चाहता हूं कि हर स्थान पर पुरुष, बिना क्रोध और विवाद के, पवित्र हाथों को उठाकर प्रार्थना करें" (प0तीमु0 2:5-8)। परमेश्वर यह चाहता है कि **सब मनुष्य** सत्य को ग्रहण करें। स्मरण रहे कि सत्य (का मार्ग) **संकरा** है (मत्ती 7:14)। एक में एक जोड़ने से सिर्फ दो ही होता है; पांच या आठ नहीं। केवल एक ही परमेश्वर है और एक ही उद्धारकर्ता। परमेश्वर के पास जाने का केवल एक ही मार्ग भी है, अनेक मार्ग नहीं। अतः आठवें पद में पौलुस विश्वासियों को यह प्रार्थना करने के लिए प्रोत्साहित करता है कि सब लोग इस एकमात्र सत्य का ज्ञान पाएं। यह परमेश्वर की इच्छानुसार है। हमारी प्रार्थना पवित्रता और धार्मिकता में होनी चाहिए और इसमें क्रोध व संदेह का स्थान नहीं होना चाहिए। प्रार्थना **आत्मा** में होनी चाहिए। शारीरिकता में पवित्रता और धार्मिकता के साथ प्रार्थना सम्भव नहीं है। क्रोध-विहीन एवं संदेह-विहीन प्रार्थना भी शारीरिकता में संभव नहीं है। आत्मा के चलाए चलने पर और आत्मा में प्रार्थना करने पर प्रभु परमेश्वर की इच्छाएं हमारी इच्छाएं होने लगती हैं और तब हम **सब मनुष्यों** के लिए प्रभु परमेश्वर पर भरोसा रखना सीखते हैं।

"इसी प्रकार स्त्रियां भी शालीनता और सादगी के साथ उचित वस्त्रों से अपने आप को सुसज्जित करें। वे बाल गूंथने और

सोने या मोतियों या बहुमूल्य वस्त्रों से नहीं, वरन अपने को भले कार्यों से संवारें जैसा कि उन स्त्रियों को शोभा देता है जो अपने आप को भक्तिन कहती हैं। प्रत्येक स्त्री चुपचाप और सम्पूर्ण अधीनता से शिक्षा ग्रहण करे। मैं यह अनुमति नहीं देता कि स्त्री उपदेश दे या पुरुष पर अधिकार जताए: वह चुप रहे। क्योंकि आदम पहिले और हव्वा बाद में बनाई गई। आदम बहकावे में न आया, परन्तु स्त्री अधिक बहकावे में आकर अपराधिनी हुई। परन्तु स्त्रियां, यदि वे संयम के साथ विश्वास, प्रेम व पवित्रता में बनी रहें तो सन्तान उत्पन्न करने के द्वारा उद्धार प्राप्त करेंगी" (प0तीमु0 2:9-15)। यहां कलीसिया में स्त्रियों के साज-श्रृंगार एवं कार्य व्यवहार के बारे में पौलुस के निर्देश पाए जाते हैं। सबसे पहले उसने स्त्रियों के साज-श्रृंगार व वेश-भूषा के बारे में निर्देश दिया। शारीरिकता के अनुसार जीवन व्यतीत करने वाले विश्वासी आत्म-प्रदर्शन (आकर्षण बनने) के अभिलाषी होते हैं; और कुछ स्त्रियाँ अपने बाहरी रूप-सज्जा के द्वारा ऐसा करने की अभिलाषी होती हैं। ऐसी महिलाएं अपने वस्त्रों, आभूषणों अथवा बालों की साज-सज्जा के द्वारा आकर्षण का केन्द्र बनना चाहती हैं। इस प्रकार के आत्म-प्रदर्शन या स्व-केन्द्रित जीवन शैली की अभिलाषा से मुक्त होने का एक ही रास्ता है – क्रूस पर मसीह की मृत्यु के भावार्थ एवं अभिप्राय को पहचानना। क्रूस पर ही हमारा पुराना मनुष्यत्व अर्थात् पापी आदम-स्वभाव मसीह के साथ क्रूसित किया गया (रोमि0 6:6)।

पौलुस ने स्त्रियों के कार्य-व्यवहार के बारे में भी निर्देश दिया। प्रभु परमेश्वर ने पिन्तेकुस्त के दिन से ही कलीसिया में शिक्षा देने एवं नेतृत्व प्रदान करने का दायित्व पुरुषों को सौंपा है। चारों

सुसमाचारों में प्रभु यीशु के अनुयायियों व सहयोगियों में बहुत सी महिलाओं का भी जिक्र है। इसी प्रकार **प्रेरितों के काम** के विवरण से स्पष्ट है कि पौलुस द्वारा की गई सुसमाचार-सेवा में भी कई स्त्रियों ने सहयोग दिया। लेकिन न तो मसीह यीशु ने और न ही पौलुस प्रेरित ने महिलाओं को पुरुषों के ऊपर अगुवाई करने की भूमिका प्रदान की। उद्धार नहीं पाए हुए लोगों को साक्षी देने तथा अन्य महिलाओं व बच्चों को शिक्षा देने के लिए महिलाएं स्वतंत्र हैं। लेकिन उन्हें कलीसिया के पुरुषों के ऊपर न तो अगुवाई करनी है और न ही उनके ऊपर शिक्षक होना है। हां, शारीरिकता के अनुसार जीवन बिताने वाली स्त्रियां कलीसिया में पदाधिकार पाने व अगुवाई करने की अभिलाषी होंगी, जैसा कि आज की अनेक कलीसियाओं में दिखाई देता है। तेरहवें-चौदहवें पद में पौलुस के तर्क पर ध्यान दें! पौलुस के अनुसार, कलीसियाई नेतृत्व की जिम्मेदारी सृष्टि के समय से ही स्त्रियों के बजाय पुरुषों को देना परमेश्वर के उद्देश्य-योजनानुसार है। हव्वा से पहले आदम की रचना करके प्रभु परमेश्वर ने यह दर्शाया कि स्त्री को पुरुष के अधिकार व उसकी संरक्षा के अधीन रहने हेतु रचा गया है (प0 कुरि0 11:3)। स्मरण रहे कि वर्जित फल खाने के लिए हव्वा धोखे में फंसी थी। बेशक, आदम ने भी जानबूझकर विद्रोह किया और इस ईश्वर-विरोधी पाप में शामिल हुआ (प0तीमु0 2:11-14)। हव्वा ने आदम की अधीनता को स्वीकार नहीं किया और मनमानी करते हुए वर्जित फल को खाया। स्वयं निर्णय लेने के बजाय यदि उसने परमेश्वर-प्रदत्त अधिकार (पति रूपी **सिर** अर्थात् आदम) के पास जाकर इस सम्बन्ध में सलाह-मशविरा किया होता तो संभवतः बात कुछ और होती।

तीन

पहला तीमुथियुस की पत्री के तीसरे अध्याय के शुरुआती सात पदों में कलीसियाई अगुवों की योग्यताओं का वर्णन पाया जाता है। विभिन्न स्थानों में पौलुस द्वारा सुसमाचार-प्रचार करने के बाद जो लोग प्रभु पर विश्वास करते थे, उन्हें वह प्रभु की उपासना करने तथा सत्य-शिक्षा पाने हेतु एक मंडली के रूप में एकत्रित करता था। इस प्रकार एकत्रित होने पर पौलुस (अथवा तीमुथियुस या तीतुस जैसा उसका कोई सहयोगी) उन्हें तब तक शिक्षा दिया करता था जब तक कि उस स्थानीय मंडली में ऐसे लोग नहीं दिखते थे जो उस झुण्ड के आत्मिक अगुवा होने योग्य होते थे। जब किसी मंडली में आत्मिक परिपक्वता की ओर अग्रसर व्यक्ति दिखाई देते थे तब उन्हें उस मंडली में **प्राचीन** (एल्डर या निगहबान) नियुक्त करके उस मंडली की देखभाल करने की जिम्मेदारी सौंप दी जाती थी। *"चेलों के मनों को स्थिर करते और विश्वास में स्थिर बने रहने के लिए यह कह कर प्रोत्साहित करते रहे, 'हमें बड़े क्लेश उठा कर परमेश्वर के राज्य में प्रवेश करना है'। फिर उन्होंने प्रत्येक कलीसिया में प्राचीन नियुक्त कर के उपवास सहित प्रार्थना की, और उन्हें प्रभु के हाथों में सौंप दिया जिस पर उन्होंने विश्वास किया था"* (प्रेरित0 14:22-23)। *"उसने मिलेतुस से इफिसुस को संदेश भेज कर कलीसिया के प्राचीनों को अपने पास बुलवाया"* (प्रेरित0 20:17)। ध्यान दें कि इन पदों में चर्च के अगुवों को "एल्डर्स" (**प्राचीन**) कहा गया है। यहां **प्राचीन** या **एल्डर** शब्द का सम्बन्ध

ज्यादा बड़ी उम्र (बुढ़ापे) से नहीं बल्कि आध्यात्मिक परिपक्वता से है, अर्थात् पवित्र आत्मा के अधीन जीवन व्यतीत करने वाले लोग। इसका उल्टा चित्रण पहला कुरिन्थियों की पत्री में पाया जाता है, जहां पौलुस ने कुरिन्थुस के विश्वासियों को आत्मिक शिशु जैसा कहा है; अर्थात वे शारीरिकता का जीवन जी रहे थे (प0कुरि0 3:1-3)।

"इसलिए अपनी और अपने पूरे झुण्ड की रखवाली करो जिसके मध्य पवित्र आत्मा ने तुम्हें अध्यक्ष ठहराया है, कि तुम परमेश्वर की उस कलीसिया की रखवाली करो जिसे उसने अपने ही लहू से खरीदा है" (प्रेरित0 20:28)। प्रेरितों के काम की पुस्तक के इस पद में कलीसियाई अगुवों को अध्यक्ष, बिशप, निगहबान या रखवाली करने वाला कहा गया है। ये लोग मंडली की देखरेख करने वाले, अगुवाई करने वाले, गाइड करने वाले, आत्मिक भोजन प्रदान करने वाले तथा उसकी संरक्षा करने वाले होते हैं। ऐसे चरवाहे अपनी भेड़ों को भेड़शाला से यूं ही बाहर नहीं खोल देते कि वे जहां चाहें वहां जाकर भोजन खोजे-खाएं व अपनी देखरेख करें। इसके बजाय, सच्चे चरवाहे के लिए अपनी भेड़ों की देखभाल में समय देना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कलीसियाई अगुवों पर भी यही बात लागू होती है। मंडली के अगुवों को आत्मिक तौर से परिपक्व होना जरूरी है। उन्हें कलीसिया की देखभाल करते रहना है और मंडली के लोगों की आत्मिक उन्नति के लिए सत्य-शिक्षा देते रहना है। बाइबॅल में **एल्डर** या **प्राचीन** शब्द प्रायः बहुवचन के रूप में ही प्रयुक्त हुआ है। कहने का तात्पर्य यह है कि पौलुस तथा अन्य प्रेरित किसी स्थानीय कलीसिया की देखरेख की जिम्मेदारी किसी एक ही एल्डर को नहीं बल्कि अनेक प्राचीनों को सौंपते थे। प्रेरितों के काम

14:23 तथा 20:17 जैसे पाठांश स्थानीय कलीसियाओं के नेतृत्व-दायित्व में एक से अधिक **प्राचीनों** (अगुवों) की भूमिका के महत्व को रेखांकित करते हैं।

"यह कथन सत्य है कि यदि कोई अध्यक्ष बनने की अभिलाषा रखता है तो वह एक भला कार्य करने की इच्छा करता है" (प0तीमु0 3:1)। इस पद में पौलुस यह नहीं सिखा रहा है कि जो कोई एल्डर (प्राचीन) होना चाहे, उसे एल्डर बना देना है। बल्कि पौलुस का तात्पर्य यह है कि आत्मा की अधीनता में जीवन व्यतीत करने वाला व्यक्ति परमेश्वर की इच्छा को ही अपनाता जाता है। यदि पवित्र आत्मा के चलाए चलने वाला एवं ख्रीष्त-स्वभाव में विकसित होने वाला कोई विश्वासी एक प्राचीन के तौर पर सेवा करने के लिए तैयार है तो उसके मन में यह बोझ प्रभु की ओर से है। इसीलिए एल्डर के लिए आवश्यक योग्यताओं के सम्बन्ध में पहली बात यह है कि उस विश्वासी में इस कलीसियाई पदाधिकार के लिए सच्ची सेवा-भावना (इच्छा) होनी चाहिए। पौलुस यह भी कहता है कि एल्डर के तौर पर सेवा करने की सच्ची इच्छा रखना एक भले सेवा-कार्य को चाहना है। जब किसी व्यक्ति को किसी देश का राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री या राजा बनाया जाता है तब सब लोग इसे एक बड़ा व अच्छा पदाधिकार (अर्थात् अच्छा नाम व काम) समझते हैं। लेकिन जरा सोचिए! प्रभु यीशु मसीह की मंडली के एक निगहबान के रूप में सेवकाई करने का अवसर पाना कितना महान व महत्वपूर्ण विशेषाधिकार है। परमेश्वर की दृष्टि में इस धरती पर कलीसिया से बढ़कर और कोई चीज महत्वपूर्ण नहीं है, क्योंकि इसके लिए उसने अपने **एकलौते पुत्र** को मरने भेजा। अतः

कलीसिया में निगहबान (अध्यक्ष, बिशप, प्राचीन या एल्डर) के रूप में नियुक्त किए गए अगुवे परमेश्वर की दृष्टि में सबसे महत्वपूर्ण दायित्व अर्थात् मंडली की देखभाल का विशेषाधिकार पाते हैं। ऐसे आत्मिक अगुवे जब रोमियों की पत्री के छठवें अध्याय के छठवें पद की सच्चाई को आत्मसात् करते हुए **आत्मा** के अनुसार जीवन जीते हैं, तब परमेश्वर उन्हें कलीसिया की प्रेमपूर्ण चिन्ता व देखरेख करने वाले सुयोग्य निगहबान होने की सामर्थ्य प्रदान करता है।

"इसलिए अवश्य है कि अध्यक्ष निर्दोष हो, एक ही पत्नी का पति हो, संयमी, समझदार, सम्माननीय, अतिथि-सत्कार करने वाला और शिक्षा देने में निपुण हो" (प0तीमु0 3:2)। यहां सबसे पहली बात यह कही गई है कि एल्डर्स (अध्यक्ष या बिशप) को निर्दोष होना चाहिए। इसका मतलब यह नहीं है कि वे कभी कोई पाप नहीं करते। परन्तु इसका यह अर्थ जरूर है कि उनमें शारीरिकता का जीवन बिताने की आदत नहीं होती अर्थात् उनके जीवन में पाप की आदत नहीं पायी जाती। यहां पौलुस की बात का यह भी मतलब नहीं है कि प्राचीनों पर कभी कोई उंगली नहीं उठाएगा अथवा उन पर कोई दोषारोपण नहीं करेगा। इसके बजाय पौलुस की बात का भावार्थ यह है कि जब किसी एल्डर पर कोई दोष लगाएगा तो उस एल्डर का जीवन-आचरण ही ऐसे दोषारोपण को झूठा ठहराएगा। तात्पर्य यह है कि एल्डर्स का जीवन-व्यवहार ऐसा होना है जिससे उन पर दोष लगाने का किसी को कोई आधार न मिले।

इसके बाद पौलुस यह कहता है कि एल्डर की केवल एक ही पत्नी होनी चाहिए। इसका भावार्थ यह है कि वह केवल अपनी पत्नी का ही प्रेमी एवं केवल अपनी पत्नी को ही चाहने वाला हो।

उसे दूसरी स्त्रियों के साथ अनुचित सम्बन्ध रखने वाला अथवा उनकी अभिलाषा करने वाला नहीं होना चाहिए। कलीसिया के अगुवे को 'एक ही स्त्री के प्रति वफादार पुरुष (पति)' होना चाहिए। **आत्मा** के चलाए चलने वाले पुरुष अपनी पत्नी के अलावा अन्य स्त्रियों के अभिलाषी नहीं होते, लेकिन शारीरिकता के चलाए चलने पर यह अभिलाषा प्रबल होगी।

अगुवों की अगली विशेषता संयमी व समझदार होना बताया गया है। इसका मतलब यह है कि एल्डर लोग बुद्धिमान होते हैं अर्थात् दूसरों की आवश्यकताओं के प्रति समझदार एवं संवेदनशील होते हैं और जीवन के प्रति गम्भीर। ऐसे लोग मूर्ख या बेपरवाह नहीं होते। **आत्मा** के अधीन जीवन बिताने वाले व्यक्ति में **मसीह का मन** होगा और वह जीवन के प्रति ईश्वरीय दृष्टिकोण रखेगा; लेकिन शारीरिक व्यक्ति स्वार्थ-सिद्धि का दृष्टिकोण रखता है।

अगुवों में अगला अपेक्षित गुण **सुशीलता** या सम्माननीयता होना चाहिए। आत्मिक अगुवे समझदारी के साथ सुव्यवस्थित, सावधानीपूर्ण एवं बुद्धिमत्तापूर्ण ढंग से जीवन व्यतीत करने वाले विश्वासी होते हैं। जो अगुवा अपने जीवन के बात-विचार एवं कार्य-व्यवहार के प्रति असावधानी व नासमझीपन दर्शाता है, वह कलीसिया के अन्य लोगों के बात, विचार एवं कार्य-व्यवहार के बारे में भी लापरवाही का रुख अपनाएगा जिनकी उसे देखभाल करनी है।

अतिथि-सत्कार करना भी आत्मिक अगुवों का एक गुण बताया गया है। ऐसे अगुवों में लोगों के प्रति सच्चा प्रेम एवं उनके प्रति सच्ची चिन्ता पाई जाती है। सच्चा बाइबॅलीय अतिथि-सत्कार

जरूरतमंदों के प्रति सिर्फ चिन्ता दर्शाना मात्र नहीं है। सच्चा बाइबॅलीय अतिथि-सत्कार भोजन, वस्त्र एवं मकान (इत्यादि) द्वारा जरूरतमंदों की सहायता करने हेतु परमेश्वर-प्रदत्त सेवा-भावना है। अगुवे (एल्डर्स) इस सच्चे बाइबलीय अतिथि-सत्कार को **आत्मा** के चलाए सम्पन्न करते हैं, शरीर के अनुसार नहीं। शारीरिक जन सिर्फ स्वार्थ-भावना से ही अतिथि-सत्कार करेगा।

एल्डर्स अर्थात् कलीसियाई अगुवों के लिए अगला गुण "**शिक्षा देने में निपुण**" होना बताया गया है। शिक्षा देने में निपुण होने के लिए सत्य का ज्ञान होना तथा सत्य पर विश्वास होना अनिवार्य है। सत्य को जानने के लिए हमें पवित्र आत्मा पर आश्रित जीवन जीना है। क्योंकि पवित्र आत्मा ही **सत्य** में हमारी अगुवाई करता है (यूह0 16:13)। जो व्यक्ति **आत्मा** के अधीन जीवन नहीं बिताता और सत्य में विकसित नहीं हो रहा है, वह कलीसिया के लिए अच्छा **निगहबान** नहीं होगा।

"शराबी या मारपीट करने वाला न हो, परन्तु नम्र हो, झगड़ालू और धन का लोभी न हो" (प0तीमु0 3:3)। मंडली के अगुओं की अन्य विशेषताओं का उल्लेख करते हुए पौलुस यह लिखता है कि एल्डर्स (आत्मिक अगुवों) को शराब का व्यसनी अर्थात् **शराबी** नहीं होना चाहिए। शराबी व्यक्ति पवित्र आत्मा के बजाय शराब के कंट्रोल में रहता है (इफि0 5:18)। **प्राचीनों** (एल्डर्स अर्थात् आत्मिक अगुवों) को हिंसक स्वभाव का व्यक्ति नहीं होना चाहिए। हिंसक स्वभाव का व्यक्ति शारीरिकता के चलाए जीवन जीता है। इसलिए ऐसे व्यक्ति को चर्च का लीडर बनाना ठीक नहीं होगा।

इसके अतिरिक्त एल्डर्स (अगुवों) को धन का **लोभी** नहीं होना चाहिए। यहां पौलुस यह नहीं कह रहा है कि प्राचीनों को दरिद्र होना चाहिए। एल्डर धनी भी हो सकता है। धन या पैसा बुरा नहीं है। पैसे या धन का लोभ बुरा है (प0 तीमु0 6:9-10)। एल्डर होने योग्य व्यक्ति **आत्मा** के अधीन जीवन व्यतीत करता है और **आत्मा** उसे ख्रीष्त पर दृष्टि लगाए रहने की प्रेरणा प्रदान करता है तथा उसमें ख्रीष्त-स्वभाव का निर्माण करता है। जो व्यक्ति धन के लोभ में ही लवलीन रहता है, उसकी दृष्टि ख्रीष्त पर केन्द्रित नहीं है। ऐसा व्यक्ति आत्मिक अगुवा (एल्डर) होने योग्य नहीं है।

"वह घर का अच्छा प्रबन्ध करता हो, अपने बाल-बच्चों को ऐसे अनुशासन में रखता हो कि वे उसका सम्मान करें। यदि कोई व्यक्ति अपने ही घर का प्रबन्ध करना नहीं जानता, तो वह परमेश्वर की कलीसिया की देखभाल कैसे करेगा" (प0तीमु0 3:4-5)? किसी विश्वासी का घर-परिवार उसकी आत्मिक परिपक्वता अथवा अपरिपक्वता का परिचायक हो सकता है, और इस प्रकार यह भी स्पष्ट हो सकता है कि वह व्यक्ति वास्तव में आत्मिक अगुवे की जिम्मेदारी संभालने के लिए तैयार (योग्य) है या नहीं। प्रायः किसी परिवार का बारीकी से अवलोकन करने पर उस घर-परिवार के अमुक विश्वासी की ख्रीष्तीय जीवन-शैली का अन्दाज हो जाता है। जो विश्वासी अपने घर-परिवार का ठीक से प्रबन्ध (अनुशासित अगुवाई) नहीं कर पाता, वह कलीसिया की भी ठीक से अगुवाई नहीं कर सकता।

"वह कोई नया चेला न हो, कहीं ऐसा न हो कि अहंकार में पड़कर शैतान के समान दण्ड का भागी हो जाए" (प0तीमु0 3:6)।

नये विश्वासी को ख्रीष्तीय जीवन की सही व सम्पूर्ण समझ प्राप्त करने के लिए पर्याप्त समय चाहिए। चूंकि वह स्वयं अभी **आत्मा** के अधीन जीवन व्यतीत करना नहीं जानता, इसलिए दूसरों की अगुवाई करने के योग्य नहीं होता। **नये चेले** को एल्डर (आत्मिक अगुवा) बनाने पर इस बात की प्रबल संभावना बनी रहती है कि वह आत्म-प्रदर्शन, अभिमान व अहंकार में आकर स्वयं को जरूरत से ज्यादा बड़ा या महत्वपूर्ण मानने लगेगा। इस प्रसंग में किसी प्रभु-भक्त की इस बात पर ध्यान देना सहायक साबित हो सकता है : *"प्रभु परमेश्वर ने सारी सृष्टि को शून्य से रचा और वह जिस किसी चीज को इस्तेमाल करता है, उसे सबसे पहले शून्य बनाता है... सभी गहन आध्यात्मिक लेख अहं (स्वार्थ या अहंकार) को ढहाने की इस अनिवार्यता को दर्शाते हैं... अहंकार–जीवन के प्रति हमारा मरण आवश्यक है, इसका एक ही तरीका है अर्थात् क्रूस।... बहरहाल, मेरी मनमर्जी पर छोड़ देने पर मैं तो विश्वास के साथ क्रूस पर सम्पन्न उद्धार–कार्य सम्बन्धी सच्चाई को नहीं अपनाना चाहूंगा, भले ही मुझे अपना कलवरी खड़ा करना पड़े। हां, अपने को दीन, दुखी तथा शहीद संत दर्शाते हुए अहंकारपूर्ण आत्म–प्रदर्शन द्वारा दूसरों की प्रशंसा पाना चाहूंगा... इतना ही नहीं अपनी स्वार्थ–सिद्धि के लिए स्वयं को सलीब पर भी चढा दूंगा। ऐसी दिखावटी दीनता मसीहियत की बदनामी है, और दुखद बात यह है कि अनेक मसीही अगुवे इसके शिकार हैं।* श्री थामस मर्टन ने लिखा है : *'बहुत से लोग यह मानते हैं कि पवित्रा आत्मा ही उनका अहंकार है, और यह बीमारी तब और खतरनाक हो जाती है जब यह दीनता का भेष धारण करने में सफल हो जाती है... जब घमण्डी अपने आपको दीन (नम्र) दिखाने लगे तब खतरा ही खतरा है'।*

इसके विपरीत जब अहंकार व स्वार्थ–केन्द्रित जीवन के विनाश हेतु मसीह के क्रूस की पीड़ादायी काट–छांट होती है तब सच्चे विश्वासी अपने जीवन में क्रूस के कार्य का विरोध नहीं करते। वे मसीह के क्रूस के समक्ष विनम्रतापूर्वक अपना हथियार डाल देते हैं ताकि उनके जीवन में प्रभु का गहरा आत्मिक कार्य हो। हमसे पहले इस दुनिया से प्रस्थान कर चुके सभी संतों की यही गवाही है"।

"कलीसिया के बाहर के लोगों में वह सुनामी हो, कहीं ऐसा न हो कि किसी दोष में पड़कर वह शैतान के फंदे में फंस जाए" (प0 तीमु0 3:7)। अब पौलुस यह लिखता है कि एल्डर ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जिसकी अविश्वासियों के मध्य अच्छी साक्षी हो अर्थात् वह सुनामी या प्रतिष्ठित हो। जो विश्वासी मसीह के साथ सह-क्रूसित होने तथा पवित्र आत्मा के अधीन जीवन व्यतीत करने की सत्यता से परिचित है, उसके जीवन में **आत्मा** के फल प्रकट होंगे चाहे वह चर्च में विश्वासियों के मध्य हो या संसार के अविश्वासियों के मध्य। जब कोई विश्वासी **आत्मा** के चलाए चलेगा तब अविश्वासियों के पास उसके विरुद्ध दोष लगाने का कोई वैध या तर्कसंगत कारण नहीं होगा।

"यह कथन सत्य है कि यदि कोई अध्यक्ष बनने की अभिलाषा रखता है तो वह एक भला कार्य करने की इच्छा करता है। इसलिए अवश्य है कि अध्यक्ष निर्दोष हो, एक ही पत्नी का पति हो, संयमी, समझदार, सम्माननीय, अतिथि सत्कार करने वाला और शिक्षा देने में निपुण हो। शराबी या मारपीट करने वाला न हो, परन्तु नम्र हो, झगड़ालू और धन का लोभी न हो। वह घर का अच्छा प्रबन्ध करता हो, अपने बाल-बच्चों को ऐसे अनुशासन में रखता हो

कि वे उसका सम्मान करें। यदि कोई व्यक्ति अपने ही घर का प्रबन्ध करना नहीं जानता, तो वह परमेश्वर की कलीसिया की देखभाल कैसे करेगा। वह कोई नया चेला न हो, कहीं ऐसा न हो कि अहंकार में पड़कर शैतान के समान दंड का भागी हो जाए। कलीसिया के बाहर के लोगों में वह सुनामी हो, कहीं ऐसा न हो कि किसी दोष में पड़कर वह शैतान के फन्दे में फंस जाए" (प0तीमु0 3:1-7)। यह सब गुण व योग्यताएं सिर्फ पवित्र आत्मा की सामर्थ्य एवं पवित्र आत्मा प्रदत्त सेवा-भावना में ही संभव हैं। केवल आत्मा के चलाए चलने पर ही हमारा जीवन आचरण ऐसा होगा, लेकिन शारीरिकता में ऐसा संभव नहीं है। *"परन्तु मैं कहता हूं कि पवित्र आत्मा के अनुसार चलो तो तुम शारीरिक इच्छाओं को किसी रीति से पूर्ण नहीं करोगे"* (गला0 5:16)। प्रभु परमेश्वर यह चाहता है कि उसका प्रत्येक जन **आत्मा** के अधीन जीवन बिताए। यह उनके लिए और भी महत्वपूर्ण है जो कलीसिया में अगुवे हैं। 'पुराने मनुष्यत्व के मसीह के साथ क्रूसित होने' तथा पवित्र आत्मा द्वारा हमारे जीवन में ख्रीष्त-जीवन (स्वभाव) निर्मित करने सम्बन्धी आध्यात्मिक सच्चाई को आत्मसात् करना बहुत महत्वपूर्ण है (रोमि0 6:6; दू0कुरि0 3:18)।

चार

प्राचीनों की योग्यताओं के बारे में लिखने के बाद पौलुस ने धर्म-सेवकों (डीकन्स) की योग्यताओं के विषय में लिखा है। डीकन्स के बारे में तीमुथियुस की पत्री में आगे बढ़ने से पूर्व प्रेरितों के काम के इन पदों पर ध्यान दें: *"उन दिनों में जब चेलों की संख्या बढ़ रही थी तब यूनानी भाषा बोलने वाले यहूदियों का इब्रानी बोलनेवालों से यह विवाद उठ खड़ा हुआ कि प्रतिदिन भोजन-वितरण में हमारी विधवाओं की उपेक्षा की जाती है। बारहों ने चेलों की मंडली को बुलाकर कहा, 'हमारे लिए यह ठीक नहीं कि हम परमेश्वर के वचन को छोड़कर खिलाने-पिलाने की सेवा करें। इसलिए, हे भाइयों, अपने में से सात सच्चरित्र पुरुषों को चुन लो जो पवित्र आत्मा और बुद्धि से परिपूर्ण हों कि हम इस कार्य का संचालन उनके हाथों में सौंप दें। परन्तु हम तो स्वयं प्रार्थना और वचन की सेवा में लगे रहेंगे।' यह बात समस्त मंडली को उचित जान पड़ी; और उन्होंने स्तिफनुस नामक एक पुरुष को जो* ***विश्वास*** *और* ***पवित्र आत्मा*** *से परिपूर्ण था, और फिलिप्पुस, प्रखुरुस, नीकानोर, तिमोन, परमिनास और अन्ताकिया के निकुलाऊस को जो यहूदी मत में आ गया था, चुन लिया। वे इन्हें प्रेरितों के सामने ले आए और उन्होंने प्रार्थना करके उन पर हाथ रखे"* (प्रेरित0 6:1-6)।

प्रारम्भिक कलीसिया में भौतिक आवश्यकताग्रस्त कुछ विधवाएं थीं। वचन की शिक्षा देते रहने तथा कलीसिया की आध्यात्मिक देखरेख पर अपना ध्यान केन्द्रित रखने हेतु प्रेरितों के लिए यह जरूरी था

कि वे ऐसे लोगों (सेवकों) को तैयार करें जिनका दायित्व उन विधवाओं की भौतिक आवश्यकताओं तथा कलीसिया की अन्य भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रबन्ध करना हो। इस सेवा के लिए प्रेरितों ने जिन लोगों का चयन किया, उनमें से कुछ वचन की शिक्षा-सेवा में लगे थे, किन्तु उनकी प्रमुख जिम्मेदारी भौतिक आवश्यकताओं की देखरेख या प्रबन्ध करना था। *"स्तिफनुस अनुग्रह और सामर्थ्य से परिपूर्ण होकर लोगों के बीच बड़े-बड़े अद्‌भुत कार्य और चिन्ह दिखाया करता था। तब वह सभागृह जो स्वतंत्र किए हुए दासों का कहलाता था, उसमें से कुछ लोग जो कुरेनी, सिकन्दरिया, किलिकिया और एशिया से आए थे उठकर स्तिफनुस से वाद-विवाद करने लगे। फिर भी वह ऐसी बुद्धि और आत्मा से बोलता था कि वे उसका विरोध करने में असमर्थ रहे* (प्रेरित0 6:8-10)।

इब्रानियों की पुस्तक के तेरहवें अध्याय के सत्रहवें पद में लिखा है कि अगुवे कलीसिया के लोगों के **प्राणों की चौकसी** करते हैं। डीकन्स या धर्मसेवकों पर कलीसिया के लोगों की भौतिक आवश्यकताओं को जानने, पहचानने एवं आवश्यकतानुसार उनकी पूर्ति करने की जिम्मेदारी होती है। इसका मतलब यह नहीं है कि डीकन लोग ही सारा काम करेंगे। कलीसिया एक आध्यात्मिक संगठन (देह) है जिसके लोग भौतिक देह के अंगों के समान एक साथ मिलकर (एकता में) कार्य करते हैं। क्या हमारा हाथ किसी दूसरे की आवश्यकता को देख सकता है? नहीं, लेकिन हमारी आंख देख सकती है, और हमारा हाथ उस आवश्यकताग्रस्त व्यक्ति के लिए कुछ कर सकता है। डीकन लोगों के प्रसंग में भी यही बात लागू होती है। वे कलीसिया के लोगों की आवश्यकताओं को देखते,

पहचानते और समझते हैं, किन्तु सम्पूर्ण मंडली के साथ मिलजुलकर ही इन आवश्यकताओं का समुचित समाधान करते हैं।

"इसलिए, हे भाइयों, अपने में से सात सच्चरित्र पुरुषों को चुन लो जो पवित्र आत्मा और बुद्धि से परिपूर्ण हों कि हम इस कार्य का संचालन उनके हाथों में सौंप दें" (प्रेरि0 6:3)। यद्यपि आध्यात्मिक आवश्यकताओं की अपेक्षा कलीसिया की भौतिक आवश्यकताओं की देखरेख करना ही डीकन लोगों की प्रमुख जिम्मेदारी है, तथापि यरुशलेम की कलीसिया से प्रेरितों ने यह कहा कि इस सेवा के लिए भी ऐसे बुद्धिमान विश्वासी नियुक्त किए जाएं जो पवित्र आत्मा के अनुसार जीवन आचरण करते हों। ऐसा क्यों? क्योंकि **आत्मा** के चलाए चलने वाले व्यक्ति की दृष्टि परमेश्वर-केन्द्रित होती है। ऐसा व्यक्ति किसी आवश्यकता या समस्या के प्रति ईश्वरीय दृष्टिकोण अपनाएगा और दूसरों की सच्चे मन से देखभाल व सेवा-सहायता करना चाहेगा। इसके विपरीत शारीरिक मसीही सिर्फ अपने बारे में तथा अपनी स्वार्थ-सिद्धि के बारे में सोचता रहेगा; अतएव ऐसे जन में दूसरों की सेवा, सहायता व देखरेख करने के लिए सच्चा प्रेम व सहानुभूति नहीं होगी।

"इसी प्रकार धर्म-सेवक भी प्रतिष्ठित व्यक्ति हों, दो-मुंहे या पियक्कड़ न हों, और न नीच कमाई के लोभी हों, परन्तु विश्वास के भेद को निर्मल विवेक से सुरक्षित रखने वाले हों। और ये भी पहिले परखे जाएं, तब यदि दोषरहित हों तो धर्म-सेवक की भांति इन्हें सेवा करने दो। इसी प्रकार स्त्रियां भी सम्माननीय हों, द्वेषपूर्ण गपशप करने वाली न हों, परन्तु संयमी तथा सब बातों में विश्वासयोग्य हों। धर्म-सेवक एक पत्नी का पति हो और अपने

बाल-बच्चों तथा परिवार का अच्छा प्रबन्धक हो। क्योंकि जिन्होंने धर्म-सेवकों का कार्य अच्छी तरह से पूरा किया है, वे अपने लिए तो एक उच्च सम्मान तथा उस विश्वास में जो मसीह यीशु में है, दृढ़ निश्चय प्राप्त करते हैं" (प0 तीमु0 3:8-13)। यहां सेवकों (डीकन्स) के विषय में पहली योग्यता 'गम्भीरता' बतायी गई है। **प्रतिष्ठित** के लिए मूलभाषा यूनानी में जो शब्द प्रयोग हुआ है उसका अर्थ है-गम्भीर, ईमानदार, सुनामी या अच्छे स्वभाव का व्यक्ति। डीकन्स लोग दूसरों की आवश्यकताओं के बारे में गम्भीरता से चिन्तित होते हैं और उनकी आवश्यकतापूर्ति के लिए प्रभु की ओर दृष्टि लगाए रहते हैं। उन्हें दिए गए सेवा-दायित्व के प्रति उनकी ईमानदारी एवं गंभीरता के कारण कलीसिया उन पर भरोसा कर सकती है।

डीकन लोगों की दूसरी योग्यता यह होनी चाहिए कि वे "दो-मुंहे" न हों। डीकन ऐसे व्यक्ति होने चाहिए जो अपनी बात पर स्थिर रहते हैं, **दुचित्ते** या अस्थिर व्यक्ति नहीं (याकूब 1:8)। शारीरिक जीवन में प्रायः हम जो कुछ कहते या बोलते हैं उसके पीछे दूसरों द्वारा पसन्द किये जाने की लालसा छिपी होती है, जो अक्सर दुचित्तेपन या दो–मुंहेपन की ओर ले जाती है। ऐसे लोग दूसरों की पसन्द के अनुसार बात करते हैं, और मंडली में विभाजन पैदा करते हैं। अतः ऐसे लोग डीकन होने के योग्य नहीं होते।

इसके बाद यह कहा गया है कि डीकन होने के इच्छुक व्यक्ति को न तो पियक्कड़ होना है और न ही नीच कमाई का लोभी। अर्थात् उसे न तो शराब की लत होनी चाहिए और न ही पैसे की लालच। इसके बजाय, डीकन होने के इच्छुक व्यक्ति को

"विश्वास को निर्मल विवेक से सुरक्षित रखने" वाला होना चाहिए। उन्हें ऐसा विश्वासी होना चाहिए जिनकी **आत्मा** द्वारा सत्य में अगुवाई होती है और विश्वासपूर्वक सत्य के अनुसार आचरण करते हैं। दसवें पद में पौलुस की इस बात पर ध्यान दीजिए: *"ये भी पहले परखे जाएं, तब यदि दोषरहित हों तो धर्म-सेवकों की भांति इन्हें सेवा करने दो"*। पौलुस बिल्कुल स्पष्ट कर देता है कि डीकन बनाए जाने वालों का जीवन-आचरण पहले से ही डीकन जैसा होना चाहिए। पवित्र आत्मा की अधीनता में जीवन व्यतीत करने वाले विश्वासी पहले से ही दूसरों की आवश्यकताओं के प्रति जागरूक, संवेदनशील एवं सेवा-सहायता की भावना रखते हैं, और दूसरों की मदद के लिए तन, मन, धन से तत्पर रहते हैं।

"इसी प्रकार स्त्रियाँ भी सम्माननीय हों, द्वेषपूर्ण गपशप करने वाली न हों, परन्तु संयमी तथा सब बातों में विश्वासयोग्य हों" (प0तीमु0 3:11)। रोचक है कि पौलुस ने डीकन लोगों की पत्नियों को भी सम्बोधित किया है और इन स्त्रियों को भी कलीसिया के अन्य लोगों की आवश्यकताओं के प्रति गम्भीर एवं संवेदनशील होने की सलाह दी है। इन्हें सम्माननीय होना है और द्वेषपूर्ण गपशप से दूर रहना है। कहने का तात्पर्य यह है कि इन्हें भी संयमी तथा विश्वसनीय होना है। संयमी, गम्भीर, विश्वसनीय अर्थात् आत्मिक स्वभाव की महिलाओं पर उन्हें सौंपे गए कार्य को पूरा करने के लिए भरोसा किया जा सकता है। प्रभु परमेश्वर ने प्रथम दम्पत्ति अर्थात् आदम-हव्वा की रचना करते समय यह कहा: "वे एक ही तन बने रहेंगे"। इस प्रकार डीकन एवं उसकी पत्नी दोनों मिलकर इस कलीसियाई सेवा में भाग लेते हैं – एक 'दम्पत्ति द्वारा की जाने

वाली सेवा'। डीकन के कार्य-दायित्व सम्बन्धी पति की जिम्मेदारी में पत्नी का शामिल व सहयोगी होना स्वाभाविक है। अतः कोई आश्चर्य नहीं कि पौलुस ने डीकन होने के इच्छुक व्यक्ति की पत्नी के बारे में भी लिखा। अतएव डीकन की पत्नी को गम्भीर, ईमानदार, गपशप नहीं करने वाली, विश्वसनीय यानि आत्मिक स्वभाव की महिला होना है।

इसके बाद पौलुस ने बारहवें पद में पुनः डीकन की योग्यताओं के सम्बन्ध में लिखा है। डीकन को भी एल्डर की तरह एक ही पत्नी का पति होना चाहिए, अर्थात् एक ही स्त्री के प्रति वफादार तथा दूसरी महिलाओं के प्रति कामुकतापूर्ण विचार-भावना रखने से दूर। एल्डर लोगों की तरह ही डीकन लोगों को भी अपने घर परिवार का अच्छा प्रबन्धक होना चाहिए – अपने परिवार की देखभाल व अगुवाई करते हुए आत्मिक परिपक्वता की ओर ले जाने वाला।

"क्योंकि जिन्होंने धर्म-सेवकों का कार्य अच्छी तरह से पूरा किया है, वे अपने लिए तो एक उच्च सम्मान तथा उस विश्वास में जो मसीह यीशु में है, दृढ़ निश्चय प्राप्त करते हैं" (प0 तीमु0 3:13)। यहां पौलुस के इन शब्दों पर विचार करें: "धर्म-सेवक का कार्य अच्छी तरह से पूरा" करना। जब कोई डीकन **आत्मा** की अधीनता में ख्रीष्त-जीवन व्यतीत करता है तो परमेश्वर की इच्छानुसार दूसरों के जीवन में इस्तेमाल होता है, और जो सेवा-सहायता करता है उससे आदर-मान भी पाता है। जो डीकन अपने इस विशिष्ट कार्य-दायित्व का सही निर्वाह करता है उसे विश्वासियों तथा अविश्वासियों की भौतिक आवश्यकताओं को पूरा

करने के अनेक परमेश्वर-प्रदत्त अवसर मिलते हैं। भौतिक सेवा-सहायता के ऐसे अवसर प्रायः मसीही जीवन की साक्षी देने का भी मौका प्रदान करते हैं।

डीकन के कार्य-दायित्व को संभालने के लिए संभावित प्रत्याशियों के जीवन में इन योग्यताओं का होना बहुत जरूरी है। ऐसे जीवन-गुण सिर्फ उन्हीं विश्वासियों में विकसित होते दिखाई देंगे जो इस सच्चाई के ज्ञान, पहचान व आधार पर जीवन बिताते हैं कि 'उनका पुराना मनुष्यत्व ख्रीष्त के साथ क्रूसित हो चुका है', और अब वे पवित्र आत्मा के प्रभाव, प्रेरणा, अगुवाई एवं नियंत्रण में जीने की राह पर हैं। प्रेरितों के काम के छठवें अध्याय के तीसरे पद में पवित्र आत्मा से परिपूर्ण लोगों को ही इस सेवा के लिए चुनने की बात के पीछे भी यही तर्क था।

"मैं यह आशा करते हुए कि तुम्हारे पास शीघ्र आऊँगा तुम्हें ये बातें लिख रहा हूं। यदि मेरे आने में विलम्ब हो जाए तो तुझे मालूम रहे कि परमेश्वर के परिवार में, जो जीवित परमेश्वर की कलीसिया और सत्य का स्तम्भ तथा आधार है, तेरा व्यवहार कैसा होना चाहिए" (प0तीमु0 3:14-15)। इन शब्दों के द्वारा पौलुस ने तीमुथियुस को यह सब लिखने के उद्देश्य की ओर इशारा किया है। उसने कलीसिया के कार्य-व्यवहार को समझाया। बेशक, मंडली प्रभु परमेश्वर की देन है (मत्ती 16:18)। मंडली के द्वारा, इस खोए एवं मरते हुए संसार के समक्ष, प्रभु परमेश्वर अपनी साक्षी प्रकट करना चाहता है। चर्च को संसार के लिए **नमक** एवं **ज्योति** समान होना है, अर्थात् ऐसा दृश्यमान साधन जिसके द्वारा संसार अपने विधाता को पहचान सके। संत पौलुस ने यहां कलीसिया को "सत्य

का स्तम्भ एवं आधार" भी बताया है। इसका अर्थ यह है कि कलीसिया ही वह साधन है जिसके माध्यम से प्रभु परमेश्वर अपने सत्य को शेष जगत के लिए प्रकट व प्रकाशित कर रहा है। इस धरती पर **कलीसिया** (परमेश्वर के बुलाए हुए लोग) ही परमेश्वर के "**सत्य**" का "स्तम्भ एवं आधार" है। यहां यह नहीं भूलना है कि कलीसिया इस **सत्य** का स्रोत नहीं है बल्कि कलीसिया इसकी अभिरक्षक तथा इसकी (सेवक व) साक्षी है।

पाँच

"आत्मा स्पष्ट कहता है कि अंतिम समय में कुछ लोग भरमाने वाली आत्माओं और दुष्टात्माओं की शिक्षा पर मन लगाने के कारण विश्वास से भटक जाएंगे। ऐसा उन झूठे लोगों के पाखंड के कारण होगा जिनका विवेक मानो जलते लोहे से दागा गया हो, जो विवाह न करने और भोजन की कुछ वस्तुओं से परे रहने की शिक्षा देंगे, जिन्हें परमेश्वर ने इसलिए बनाया है कि विश्वासी और सत्य को पहिचानने वाले धन्यवाद के साथ खाएं" (प0तीमु0 4:1-3)। पवित्र शास्त्र के इन पदों में पौलुस यह चेतावनी दे रहा है कि कुछ विश्वासी ईश्वरीय सत्य से भटक कर झूठी शिक्षाओं पर मन लगाएंगे। पौलुस के शब्दों पर ध्यान दें – ऐसे लोग सत्य को त्याग कर जिस शिक्षा के पीछे जा रहे हैं, वह **दुष्टात्माओं** की ओर से है। **शरीर** के चलाए चलने पर शैतान और उसके सहकर्मियों के धोखे में आना आसान होता है। दूसरे पद के अनुसार, लोगों को भरमाने वाले पाखंडी झूठ में लिप्त होकर बात-व्यवहार करते हैं जिनका "विवेक मानो जलते लोहे से दागा गया" हो। इफिसियों की पत्री में पौलुस यह कहता है कि **शरीर** के अनुसार आचरण करने वाले लोग **सत्य** को पहचानने-समझने की क्षमता खोने लगते हैं – "उनकी बुद्धि अंधकारमय हो" जाती है (इफि0 4:18)। अतः सत्य को पहचानने में असमर्थ होने के कारण वे सरलता से धोखे का शिकार होकर सच्चे विश्वास से भटक जाते हैं और झूठी शिक्षाओं के पीछे हो लेते हैं। लोग किस प्रकार की झूठी शिक्षाओं में बहकते हैं? इनके कुछेक उदाहरण तीसरे पद में दिए गए हैं। ध्यान दें कि ये उदाहरण

व्यवस्था एवं स्व-कर्म केन्द्रित धर्म-नियमों पर ही आधारित हैं। जब कोई व्यक्ति शारीरिकता के चलाए चलता है तो सच्चे अनुग्रह एवं सत्य की समझ से दूर भटकने लगता है, और अन्ततः व्यवस्था-बंधन में ही जाता है। ऐसी स्व-कर्म शिक्षा (यह न करो, वह न करो जैसी शिक्षा) बाह्य तौर पर धार्मिक व आध्यात्मिक प्रतीत होती है, लेकिन पहले पद के अनुसार इसका स्रोत शैतान है। ऐसी शिक्षा 'क्रूस पर मसीह द्वारा पूर्ण किए गए उद्धार-कार्य' पर भरोसा करने के बजाय स्व-कर्म पर भरोसा करना सिखाती है। यह बहकाने वाली शिक्षा विश्वासीजन को यह नहीं सिखाती कि उसका 'पुराना पाप-स्वभाव मसीह के साथ क्रूसित किया जा चुका है'। इसके बजाय शारीरिकता को सुधारने-संवारने के द्वारा बेहतर बनाने की बात करती है। इसीलिए दूसरे पद में पौलुस ऐसे लोगों को पाखंडी कहता है; क्योंकि ऐसे लोग पवित्र एवं धर्मी जीवन व्यतीत करने की आवश्यकता तो बताते हैं, किन्तु ऐसे जीवन को स्व-प्रयास द्वारा जीने की बात करते हैं।

कोई भी मनुष्य अपनी सामर्थ्य में सच्चे परमेश्वर को ग्रहणयोग्य पवित्र व धर्मी जीवन नहीं जी सकता। महापवित्र परमेश्वर को ग्रहणयोग्य पूर्णतः निर्दोष जीवन अपनी शक्ति, भक्ति व युक्ति में जी सकने की बात करना पाखण्ड है। प्रभु परमेश्वर अपने विश्वासियों से पवित्र आत्मा के चलाए चलने की अपेक्षा करता है। जो ऐसा करते हैं, उनका जीवन ईश्वरोन्मुख होता जाता है, अर्थात् ईश्वरपरायणता (ईश्वर-भक्ति) की ओर बढ़ता जाता है। पवित्र आत्मा सिर्फ ईश्वरोन्मुखता (ईश्वर-भक्ति) का ही जीवन निर्मित करता है। परन्तु शारीरिक व्यक्ति "पवित्र आत्मा के चलाए चलने"

की बात की अनदेखी करते हुए अपनी शारीरिकता के प्रयास अर्थात् अपनी शक्ति व युक्ति से **भक्ति** पैदा करना चाहता है और इस प्रकार स्वयं को धार्मिक (आत्मिक) दर्शाता है।

"परमेश्वर ने जो कुछ बनाया वह सब अच्छा है, और कुछ भी अस्वीकार करने योग्य नहीं, यदि उसको धन्यवाद के साथ खाया जाय, क्योंकि वह परमेश्वर के वचन और प्रार्थना द्वारा शुद्ध हो जाता है" (प0तीमु0 4:4-5) झूठे शिक्षकों (की शिक्षा) के विपरीत, पौलुस यहां इस तथ्य की पुष्टि करता है कि (उत्पत्ति की पुस्तक के प्रथम अध्याय के अनुसार) परमेश्वर द्वारा रची गई प्रत्येक चीज अच्छी है। **याफा** नामक स्थान में पतरस को मिले दर्शन से भी इसी बात की पुष्टि होती है। प्रभु परमेश्वर ने पतरस को वह भोजन खाने का निर्देश दिया जिसे यहूदी लोग 'अशुद्ध या अपवित्र' मानते थे। उस दर्शन के दौरान पतरस को यह वाणी सुनाई दी: "जिसे परमेश्वर ने शुद्ध ठहराया है, उसे तू अपवित्र मत कह" (प्रेरित0 10:9-16; तथा लैव्य0 ग्यारहवां अध्याय)। झूठे शिक्षक 'यह न करो, वह न खाओ' जैसे अनावश्यक प्रतिबन्धों द्वारा वैवाहिक जीवन एवं खान-पान के बारे में हस्तक्षेप कर रहे थे। पौलुस ने परमेश्वर की भलाई को दर्शाते हुए जवाब दिया। पौलुस के जवाब को थोड़े से शब्दों में इस प्रकार भी कहा जा सकता है: 'झूठे शिक्षक विवाह एवं भोजन को बुरा कहते हैं, परन्तु परमेश्वर इन दोनों को अच्छा कहता है'। अब आप स्वयं फैसला करें कि किसकी बात मानेंगे। पांचवे पद के अनुसार खाने की चीजें "परमेश्वर के वचन एवं प्रार्थना द्वारा शुद्ध" हो जाती हैं। अर्थात् हम प्रार्थना में परमेश्वर द्वारा **अच्छी** बताई गई चीज के

बारे में सहमति प्रकट करते हुए उसे ईश्वरीय उद्देश्य के अनुसार अपने जीवन में उपयोग हेतु पृथक (पवित्र) करते हैं।

"भाइयों को इन बातों का स्मरण दिलाकर तू मसीह यीशु का अच्छा सेवक ठहरेगा और विश्वास की बातों और उस खरी शिक्षा द्वारा जिसे तू मानता आया है तेरा पालन-पोषण होता रहेगा। अभक्ति की ऐसी कथा-कहानियों से जो केवल बूढ़ियों के योग्य हैं कोई सम्बन्ध न रख, परन्तु भक्ति के लिए अपने आप को अनुशासित कर, क्योंकि शारीरिक साधना से केवल थोड़ा लाभ होता है, परन्तु भक्ति सब बातों में लाभदायक है, क्योंकि इस पर वर्तमान और आने वाले जीवन की प्रतिज्ञा निर्भर है। यह बात विश्वसनीय और हर प्रकार से ग्रहणयोग्य है। हम इसीलिए परिश्रम और प्रयत्न करते हैं, क्योंकि हमारी आशा जीवित परमेश्वर पर स्थिर है, जो सब मनुष्यों का – विशेषकर विश्वासियों का – उद्धारकर्ता है" (प0तीमु0 4:6-10)। यहां सत्य पर स्थिर रहने के महत्व पर पुनः जोर दिया गया है। जो लोग पवित्र आत्मा द्वारा सत्य में जीवन व्यतीत कर रहे हैं और सत्य में दूसरों की भी अगुवाई कर रहे हैं, वे मसीह के अच्छे सेवक हैं। अभक्तिपूर्ण झूठी शिक्षाओं (अर्थात् जो बातें सत्य के अनुसार नहीं हैं) से दूर रहने तथा ईश्वर-भक्ति में मन लगाने की सलाह दी गई है। ईश्वर-भक्ति का मतलब मनुष्य द्वारा प्रभु की नकल करना नहीं है। प्रभु परमेश्वर द्वारा विश्वासी के जीवन में ख्रीष्त-स्वभाव का निर्माण ही ईश्वरपरायणता (सच्ची ख्रीष्तीय भक्ति) है। ख्रीष्त के स्वभाव की समानता में विकसित होना, पवित्र आत्मा के काम से ही सम्भव है। हमारे जीवन में और हमारे जीवन-स्वभाव द्वारा सिर्फ पवित्र आत्मा ही ख्रीष्त-जीवन-स्वभाव को

निर्मित, विकसित व प्रदर्शित करता है। बहरहाल ख्रीष्त-स्वभाव में विकसित होना झटपट या आसान प्रक्रिया नहीं है। अक्सर पवित्र आत्मा को हमारे विश्वास-अनुभव के द्वारा हमें यह सिखाने में कई वर्ष लग जाते हैं कि जैसे हम स्वयं का पाप से उद्धार करने में अक्षम (लाचार) थे; उसी प्रकार अपनी शक्ति, युक्ति या कर्म-प्रयास से अपना आत्मिक विकास (पवित्रीकरण) करने में भी लाचार हैं। यह प्रभु का कार्य है और उसने हमारे लिए मसीह द्वारा क्रूस पर यह सब पूरा कर दिया है।

हमारी असमर्थता और ख्रीष्त द्वारा सम्पन्न किए गये उद्धारप्रद कार्य की पूर्ण पर्याप्तता को पहचानने के लिए आत्मा हमें असफलता, कठिनाई और परेशानियों से होकर जाने देता है। इन कठिनाइयों और असफलताओं के माध्यम से ही हम अपनी लाचारी अर्थात् असमर्थता को पहचानते हैं और इस प्रकार अपने जीवन में प्रभु की निरन्तर आवश्यकता को पहचानते हुए हम अपने अहं पर भरोसा करना छोड़ते हैं और उस सर्वसामर्थी प्रभु परमेश्वर पर आशा-भरोसा रखना सीखते हैं जिसने हमें भक्तिपूर्ण जीवन प्रदान करने के लिए क्रूस पर किए गये अपने कार्य के द्वारा सब कुछ सम्पन्न कर दिया है। अतः पौलुस सातवें पद में जिस **अनुशासन** की बात कर रहा है, वह हमारे 'धर्म-कर्म-प्रयास' को अनुशासित करने की बात नहीं है, बल्कि हमारे **विश्वास** सम्बन्धी बात है। अर्थात् मसीह द्वारा हमारे लिए पूर्ण किए गये उद्धार-कार्य के आध्यात्मिक आशीष व अभिप्राय को अपनाते जाने में हमारे **विश्वास** (विश्वास-विश्राम) का विकास। बेशक, शारीरिक कसरत से कुछ लाभ होता है। पौष्टिक भोजन खाना तथा नियमित व्यायाम करना

हमारी देह को स्वस्थ रखने में सहायक होगा। लेकिन इससे हम ईश्वरपरायण नहीं बनेंगे। इससे मसीह का ज्ञान या मसीह का जीवन-स्वभाव नहीं पायेंगे। इसीलिए पौलुस यह कहता है कि ईश्वर-भक्ति "सब बातों में लाभदायक है"। सच्ची ईश्वरपरायणता (भक्ति) का अनुभव तभी प्रारम्भ होता है जब हम 'मसीह के साथ अपने पुराने मनुष्यत्व के सह क्रूसित होने की सच्चाई को विश्वास के द्वारा अपनाना' तथा पवित्र आत्मा पर भरोसा करना शुरू करते हैं। इससे अर्थात् ईश्वरभक्ति से सब बातों में फायदा होता है – सिर्फ हमारी वर्तमान देह के लिए ही नहीं, बल्कि भविष्य के लिए भी फायदे का वायदा। नौवें पद के अनुसार यह सब बातें सत्य एवं पूर्णतः विश्वसनीय हैं। दसवें पद में पौलुस कहता है कि इसी कारण हम परिश्रम करते हैं और बदनामी भी सहन करते हैं, क्योंकि हमारा आशा-भरोसा जीवित परमेश्वर पर है। हां, हमारा जीवित परमेश्वर अपने वायदे के अनुसार हमारे जीवन में काम कर रहा है, हमारे विश्वास का निर्माण कर रहा है ताकि हम ईश्वर-भक्ति के अनुभव में बढते जाएं।

"इन्हीं बातों की आज्ञा व शिक्षा दे। कोई तेरी युवावस्था को तुच्छ न समझे, परन्तु तू वचन, व्यवहार, प्रेम, विश्वास और पवित्रता में विश्वासियों के लिए आदर्श बन जा। मेरे आने तक पवित्र शास्त्र पढ़कर सुनाने, उपदेश देने और सिखाने में लगा रह। अपने उस वरदान से जो तुझ में है और जो तुझे प्राचीनों के हाथ रखते समय नबूवत द्वारा प्राप्त हुआ था, निश्चिन्त न रह। इनके लिए प्रयत्नशील रह और इन पर अपना पूरा मन लगा, जिससे तेरी प्रगति सब पर प्रकट हो जाए। अपने ऊपर और अपनी शिक्षा पर विशेष ध्यान दे

और इन बातों पर स्थिर रह, क्योंकि ऐसा करने से तू अपने और अपने सुनने वालों के भी उद्धार का कारण होगा (प0तीमु0 4:11-16)। अब पौलुस ने तीमुथियुस को प्रोत्साहित किया कि वह दूसरों को यह सब सच्चाईयां सिखाता रहे तथा स्वयं ऐसा जीवन बिताए जिससे उसकी युवावस्था को कोई तुच्छ न समझ सके। इतना ही नहीं, पौलुस ने तीमुथियुस को अपने समस्त कार्य-व्यवहार अर्थात् वचन, व्यवहार, प्रेम, विश्वास एवं पवित्रता में अन्य विश्वासियों के लिए एक आदर्श होने के लिए प्रोत्साहित किया। पौलुस ने विशेष जोर देते हुए तीमुथयुस को **ईश्वर-भक्ति** की इस सत्य-शिक्षा पर "पूरा मन लगाने" के लिए प्रोत्साहित किया। उसे **आत्मा** में मसीह के स्वभाव के ज्ञान में विकसित होने में लवलीन रहना था, और इसके परिणामस्वरूप उसके जीवन आचरण से मसीह के स्वभाव के फल परिलक्षित होने थे। अन्ततः पौलुस बड़ी गम्भीरता से तीमुथियुस को सावधान करता है कि वह अपने एवं अपनी शिक्षा (ख्रीष्तीय-सिद्धान्त) पर विशेष ध्यान देता रहे और सत्य में भक्तिपूर्ण जीवन बिताए। ऐसा करने के द्वारा वह दैनिक तौर पर शारीरिकता के चंगुल से बचा रहेगा तथा इन सच्चाईयों के ज्ञान में दूसरों को भी आगे बढ़ा सकेगा।

छः

"किसी वृद्ध को कठोरता से न डांट; वरन उसे पिता जानकर समझा। युवकों को भाई, वृद्ध महिलाओं को माता और युवतियों को बहिन जानकर पूर्ण पवित्रता से समझा" (प0तीमु0 5:1-2)। कलीसिया का प्रत्येक विश्वासी कभी न कभी शरीर के अनुसार आचरण कर देता है; और उसे डांटने, समझाने, सुधारने अथवा प्रोत्साहन की जरूरत होती है। तीमुथियुस भी एक जवान व्यक्ति था। अतः पौलुस उसे यह निर्देश दिया कि ऐसे समय मंडली में विभिन्न आयु वर्ग के लोगों के साथ कैसे पेश आए। बुजुर्ग पुरुषों को पिता समान मानकर पेश आना है। जवान पुरुषों को भाई मानकर पेश आना है। बुजुर्ग स्त्रियों को माता समान मानकर पेश आना है। जवान स्त्रियों को बहन समान मानकर (**पूर्ण पवित्रता** में) समझाना है। प्रत्येक आयु वर्ग के लोगों के साथ एवं प्रत्येक परिस्थिति में प्रेमपूर्वक पेश आना है। प्रेम को ही हमारे विचार, भावना एवं नीयत का केन्द्र-बिन्दु होना है। यहां यह नहीं भूलना चाहिए कि सच्चा बाइबलीय **प्रेम** पवित्र आत्मा का एक फल है, अतएव दूसरों से सच्चा प्रेम करना सिर्फ **आत्मा** द्वारा ही सम्भव है।

इसके बाद पौलुस यह सलाह देता है कि जवान स्त्रियों के साथ (पूरी पवित्रता के साथ) बहनों जैसा व्यवहार करना है। क्यों? क्योंकि शारीरिकता के क्षणों में, किसी भी मसीही अगुवे के लिए,

किसी जवान स्त्री के प्रति भावुकता में आकर्षित होकर, रोमांस के प्रलोभन व पाप में गिरना आसान है। इसीलिए पौलुस ने युवतियों के प्रति "पूर्ण पवित्रता" के साथ पेश आने एवं समझाने की बात लिखी; जो कि केवल पवित्र आत्मा के अनुसार जीवन आचरण द्वारा ही संभव है।

"जो प्राचीन अच्छा प्रबन्ध करते हैं वे दो गुने आदर के योग्य समझे जाएं, विशेषकर वे जो प्रचार और शिक्षा-कार्य में कठिन परिश्रम करते हैं। क्योंकि पवित्र शास्त्र का कथन है, 'दांवने वाले बैल का मुंह न बांधना,' और 'मजदूर अपनी मजदूरी का अधिकारी है।' किसी प्राचीन के विरुद्ध दो या तीन गवाहों के बिना कोई दोषारोपण न सुन। जो लोग पाप करते रहते हैं, उन्हें सब के सामने डांट जिस से अन्य लोग भी पाप करने से डरें। मैं तुझे परमेश्वर, मसीह यीशु और उसके चुने हुए स्वर्गदूतों की उपस्थिति में दृढ़तापूर्वक चेतावनी देता हूं कि इन सिद्धान्तों का पालन निष्पक्ष होकर कर और पक्षपात की आत्मा से कुछ न कर। अतिशीघ्रता से किसी पर हाथ रखकर दूसरों के पापों में सहयोगी न बन। अपने आप को पवित्र बनाए रख" (प0 तीमु0 5:17-22)। इस पत्री के तीसरे अध्याय में हमने **प्राचीनों** (कलीसियाई अगुवों) के बारे में पढ़ा। अब अगुवों के प्रति मंडली की जिम्मेदारी के बारे में पौलुस समझा रहा है। वह लिखता है कि "अच्छा प्रबन्ध" करने वाले तथा वचन के "प्रचार व शिक्षा" में परिश्रम करने वाले **प्राचीन** "दो गुने आदर के योग्य" होते हैं। तात्पर्य यह है कि चर्च में पूर्णकालिक शिक्षा-सेवा प्रदान करने वाले आत्मिक अगुवों को चर्च ही से आर्थिक पारितोषिक (सपोर्ट) मिलना चाहिए। जैसे "दांवने वाला बैल"

खलिहान का अनाज खाता है और मजदूर अपनी मजदूरी पाता है, उसी प्रकार **प्राचीन** (अगुवे) लोग भी, जिन लोगों के मध्य सेवा करते हैं, उनसे आर्थिक सपोर्ट पाने के योग्य हैं।

इसके बाद पौलुस उन अगुवों के सम्बन्ध में लिखता है जो किसी पाप में गिर जाते हैं। किसी प्राचीन (आत्मिक अगुवे) के विषय में कोई दोषारोपण दो-तीन विश्वसनीय साक्षियों की उपस्थिति में ही मानना चाहिए। चूंकि मंडली के लोगों की आत्मिक भलाई के लिए परमेश्वर इन आत्मिक अगुवों को अपनी इच्छानुसार इस्तेमाल करता है, इसलिए ऐसी सेवा के दौरान ऐसे मौके भी आते हैं जबकि **प्राचीनों** द्वारा दूसरे विश्वासियों को समझाते हुए कठोर शब्दों का इस्तेमाल करना पड़ सकता है। शारीरिकता में जीवन व्यतीत करने वाले विश्वासी, अगुवों की ओर से कठोर बातों को सुनने पर नाराज हो जाते हैं और कभी-कभी बदले की भावना से प्राचीनों के ऊपर दोष लगाने लगते हैं। पौलुस की बात बिल्कुल स्पष्ट है: यदि कोई आत्मिक अगुवा पाप में जीवन बिता रहा है तो उसे सारी मंडली के समक्ष समझाया जाना चाहिए ताकि मंडली के शेष लोगों को परमेश्वर के भय में अपनी जीवन-शैली को भी जांचने-परखने का मौका मिले। इतना ही नहीं, अपने आत्मिक अगुवे के साथ कलीसियाई अनुशासन को देखकर अन्य विश्वासी भी ऐसे जीवन-आचरण के खतरों के प्रति खबरदार हो सकते हैं। इन सब बातों के प्रसंग में पौलुस ने इक्कीसवें पद में **निष्पक्षता** पर जोर दिया है (याकूब 2:1-9)। शरीर के अनुसार आचरण करने वालों के लिए स्वार्थवश मनपसंद लोगों का पक्ष लेना बड़ा आसान हो जाता है। अतएव **आत्मा** के चलाए चलना बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि तभी पक्षपातरहित व्यवहार सम्भव है।

अन्ततः बाईसवें पद में जल्दबाजी में किसी व्यक्ति को **प्राचीन** (आत्मिक अगुवा) बनाने से मना किया गया है। आत्मिक अगुवों (एल्डर्स) को अनुशासित करने की समस्या से बचने का एक तरीका यह है कि उनको इस दायित्वपूर्ण पद पर नियुक्त करने से पहले भली-भांति जांच-परख लिया जाए। चर्च लीडर बनने का इच्छुक प्रत्येक जन कलीसिया में आत्मिक सेवकाई करने लायक नहीं होता। इस सेवा-कार्य में आने के इच्छुक लोगों की योग्यताओं के बारे में तीमुथियुस को सुनिश्चित हो लेना आवश्यक था, और आज भी ऐसा करना जरूरी है। इस सम्बन्ध में बाईसवें पद के इस वाक्यांश पर ध्यान दें: "...दूसरों के पापों में सहयोगी न बन"। तीसरे अध्याय में पौलुस ने यह परामर्श दिया कि **नये चेले को प्राचीन** (अध्यक्ष, एल्डर, या बिशप) न बनाया जाय (3:6)। नये विश्वासी को आत्मिक जीवन में विकसित होने का समय देना जरूरी है, तभी आत्मिक अगुवाई प्रदान करने की उसकी योग्यताएं (एवं अयोग्यताएं) स्पष्ट हो सकेंगी। जब कोई व्यक्ति किसी ऐसे विश्वासी को एल्डर (आत्मिक अगुवा) बनाने की सहमति देता है जो आगे चलकर अयोग्य साबित होता है, तब सहमति देने वाला व्यक्ति कलीसिया पर उस एल्डर के कुप्रभाव के दोषों में भी भागीदार होता है।

"हे तीमुथियुस, जो धरोधर तुझे सौंपी गई है उसकी रक्षा कर। जिस ज्ञान को ज्ञान कहना ही भूल है, उसके अशुद्ध बकवास और विरोध की बातों से दूर रह। उसे स्वीकार करके अनेक लोग विश्वास से भटक गए हैं। तुम पर अनुग्रह होता रहे" (प0तीमु0 6:20-21)। ध्यान दें! अपनी पत्री के अन्त में पौलुस एक बार फिर तीमुथियुस

को सावधान करता है कि उसे जो '**शिक्षाएं, सिद्धान्त** एवं **निर्देश**' मिले हैं उनकी सतर्कतापूर्वक रखवाली करे। पवित्र आत्मा के चलाए जीवन बिताते हुए पौलुस द्वारा प्रदत्त समस्त निर्देशों का पालन करने में तीमुथियुस समर्थ था, और ऐसा करने पर झूठे शिक्षकों द्वारा विश्वासियों को बहकाना भी आसान नहीं था, क्योंकि तब मंडली सत्य के ज्ञान व सत्य पर आचरण की ओर अग्रसर रहती। तीमुथियुस को केवल योग्य आत्मिक अगुवों या एल्डर्स को नियुक्त करना था। इस दिशा में उसका कार्य-व्यवहार दूसरों के लिए एक आध्यात्मिक उदाहरण होना था। यही बात हमारे लिए भी सच है। पवित्र आत्मा के चलाए चलने पर हम भी उस सेवा-दायित्व को पूरे मन से संभालेंगे जिसकी प्रभु परमेश्वर ने हमें जिम्मेदारी दी है। इस पत्री के अंतिम वाक्य पर ध्यान दें: "तुम पर अनुग्रह होता रहे"। यह अंतिम आशीष-वचन मनुष्य की सबसे बड़ी आवश्यकता की ओर ध्यान आकर्षित करता है – **परमेश्वर का अनुग्रह**। परमेश्वर के असीम अनुग्रह का स्वाद चख लेने के बाद पौलुस की यही प्रार्थना रही कि अन्य लोग भी परमेश्वर के अनुग्रह को पहचानें।

इस श्रंखला की पुस्तकों का निम्नलिखित क्रम में अध्ययन ज्यादा लाभप्रद होगा :

1. उत्पत्ति और उद्धार की कहानी
2. सुदृढ़ आधार
3. परमेश्वर-कृत उद्धार
4. प्रेरितों के कार्य
5. वह मुझमें और मैं उसमें
6. रोमियों
7. इफिसियों
8. पहला कुरिन्थियों
9. पहला तीमुथियुस
10. तीतुस
11. पहला और दूसरा थिस्सलुनीकियों